

# हवा-पानी के साथ बरसता रोग गेरुआ

डॉ. किशोर पंवार

**गे**रुआ दुनिया का सबसे खतरनाक वनस्पति रोग है। इस रोग के कारण कई बार अकाल पड़े हैं। यह प्रायः गेहूं को संक्रमित करता है। इस रोग के कारण गेहूं की पूरी-की-पूरी फसल चौपट हो जाती है। इसी के कारण 18वीं व 19वीं सदी में भारत सहित दुनिया के कई देशों में अकाल पड़े हैं। बिहार में 1956 में इसी रोग के प्रकोप से गेहूं की पूरी फसल तबाह हो गई थी। यही गेरुआ कई देशों की आर्थिक तबाही का कारण भी बना है। यह रोग आम तौर पर अनाज फसलों को प्रभावित करता है। इनमें गेहूं, बाजरा व जौ प्रमुख हैं।

गेरुआ फफूंद (*पक्सीनिया*) पौधे की पत्तियों और तनों पर आक्रमण करती है। इसके संक्रमण का पता तब चलता है जब पत्तियों पर नारंगी, पीले धब्बे नज़र आते हैं। गेरुआ रोग को स्टेम रस्ट भी कहते हैं। रोगी पौधे ऐसे लगते हैं जैसे किसी ने उन पर गेरु छिड़क दिया हो या पौधे पर जंग लग गया हो। गेरुआ रोग उत्पन्न करने वाली फफूंदों की करीब 5000 प्रजातियां पाई जाती हैं। इनमें *पक्सीनिया* प्रजातियां सबसे घातक है। *पक्सीनिया* की विभिन्न प्रजातियां अलग-अलग अनाज फसलों पर गेरुआ रोग उत्पन्न करती हैं।

इस फफूंद की विभिन्न किस्में अपना पोषक चुनने में बहुत नखरैल होती हैं। दूसरे शब्दों में ये पोषक के चुनाव में बहुत विशिष्ट होती हैं। कुछ तो इतनी विशिष्ट होती हैं कि वे किसी खास प्रजाति को या उसमें भी किसी खास किस्म को ही संक्रमित करती हैं। जैसे *पक्सीनिया ग्रेमिनिस* की एक किस्म *ट्रीटीसी* गेहूं पर आक्रमण

करती है जबकि इसी की दूसरी किस्म जौ पर। रंग-रूप में दोनों एक जैसी हैं। इसलिए जहां आम तौर पर जीवों की पहचान के लिए दो नाम काफी रहते हैं (वंश और प्रजाति) वहीं इन फफूंदों के लिए तीन नाम बताना पड़ते हैं। जैसे गेहूं का वानस्पतिक नाम *ट्रिटिकम वल्गेयर* है वहीं इस पर लगने वाली फफूंद का नाम *पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रीटीसी* है। इस त्रिनाम से भी कई बार पूरी पहचान नहीं हो पाती, एक उपनाम और जोड़ना पड़ता है - जैसे *पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रीटीसी यूजी-99*। यहां यूजी-99 से मतलब है कि यह किस्म यूगाण्डा में 1999 में पहली बार देखी गई जो गेहूं की कुछ खास किस्मों पर आक्रमण करती है।

उल्लेखनीय बात यह है कि *पक्सीनिया* प्रकृति में लैंगिक

## गेरुआ का जीवन चक्र

*पक्सीनिया* फफूंद आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि इसका प्रकोप किस तरह होता है और किन परिस्थितियों में होता है। इसका जीवन चक्र पूरी तरह समझना आसान नहीं था। 1940 के दशक में प्रोफेसर के.सी. मेहता और उनके साथी गेरुआ रोग का अध्ययन करने में जुटे थे। इसके लिए उन्हें कई नवाचारी तकनीकों का सहारा लेना पड़ा था। सबसे पहले तो प्रो. मेहता के दल ने हवा में इस फफूंद के बीजाणुओं की उपस्थिति पता करने के लिए एक सरल एयरोस्कोप (हवादर्शी) बनाया। यह एयरोस्कोप और कुछ नहीं कुछ गुब्बारों और पतंगों का ही बदला हुआ रूप था। इन पतंगों और गुब्बारों पर ग्रीस लगी पट्टियां चिपकाकर इन्हें हवा में अलग-अलग ऊंचाई पर उड़ाया जाता था। पतंग उड़ाने का यह काम पहाड़ी क्षेत्रों, तराई क्षेत्रों और आगरा के मैदानी क्षेत्रों में किया जाता था। जब ये पतंगे/गुब्बारे लौटते तो इन पर लगी ग्रीस युक्त पट्टियों का विश्लेषण करके पता लगाया जाता कि इन पर कौन-से बीजाणु चिपके हुए हैं।

इस सरल 'उपकरण' की मदद से प्रो. मेहता यह पता लगाने में सफल रहे कि *पक्सीनिया* के बीजाणु हवा में 700 मीटर की ऊंचाई तक पाए जाते हैं। वे यह भी समझ पाए कि ये बीजाणु जाड़ों में होने वाली बारिश (मावठे) के साथ बरसते हैं और गेहूं को संक्रमित करते हैं। कहा जा सकता है कि यह आसमान से टपकने वाली बीमारी है, और इसीलिए रोमवासी इससे रक्षा के लिए रस्ट-देवता रोबिगो की पूजा करते थे।

व अलैंगिक दोनों तरह से प्रजनन करती है। प्रजनन क्रिया के दौरान नई-नई किस्में विकसित होती रहती हैं। हर बार जब नई किस्म बनती है, तो वह ज़्यादा खतरनाक होती है क्योंकि प्रकृति के लिए वह एक नई चीज़ होती है, उसे किसी तरह की रुकावट या प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ता।

पेड़-पौधों में रोग फैलाने वाले अधिकांश रोगाणु हवा में रहते हैं। ये हवा के द्वारा ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाए जाते हैं। गेरुआ भी हवा वाहित रोग है। गेरुआ की रोगकारक फफूंद *पक्सीनिया ग्रैमिनेस* गेहूं के पौधे पर इसके यूरिडोस्पोर के ज़रिए फैलती है। दरअसल, *पक्सीनिया* का जीवन चक्र दो पोषकों पर पूरा होता है। इसके जीवन चक्र का अलैंगिक हिस्सा गेहूं पर सम्पन्न होता है जबकि लैंगिक हिस्सा बारबेरी नामक पौधे पर। अर्थात् इसका एक पोषक तो मैदानी एकबीजपत्री फसल है जबकि दूसरा पोषक

#### डाल-डाल, पात-पात...

जब कोई रोग फैलता है, तब भी कुछ पौधे ऐसे होते हैं जो इससे अप्रभावित रहते हैं। ऐसे पौधों का चुनाव करके अधिक उपज देने वाले पौधों से उनका संकरण करवाया जाता है। इस तरह ऐसे पौधे व बीज बनते हैं जो उस रोग के प्रतिरोधी होते हैं। परंतु संकरण से प्राप्त किस्मों में रोग प्रतिरोध स्थायी नहीं होता। दरअसल, रोग प्रतिरोध कुछ विशिष्ट जीन्स के कारण होता है। ये जीन्स वातावरण की एक सीमा में ही सक्रिय रहते हैं। यह सीमा पार हो जाए, तो रोग लगने की आशंका बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त हर बार बीज बनने की क्रिया के दौरान भी कई वजहों से रोग प्रतिरोध क्षमता कम होने लगती है।

अलबत्ता, रोग प्रतिरोध क्षमता की नाकामी का एक बड़ा कारण यह है कि रोगजनक में भी विकास के ज़रिए नई-नई किस्में बनती रहती हैं। वास्तव में कोई उन्नत रोग-प्रतिरोधी फसल तब तक ही प्रतिरोधी रहती है, जब तक रोगजनक की नई किस्म न बन जाए। दिक्कत यह है कि रोगजनक सूक्ष्मजीवियों में नई किस्मों के विकास की संभावना फसल की अपेक्षा बहुत ज़्यादा होती है। इसलिए आप प्रतिरोधी किस्म जिस रफ्तार से तैयार करते हैं, उससे तेज़ गति से रोगजनक परिवर्तित होते रहते हैं।

एक पहाड़ी दोबीजपत्री पौधा। इसके जीवन चक्र में कुल पांच प्रकार के बीजाणु (स्पोर्स) बनते हैं - यूरिडोस्पोर, टेल्युरोस्पोर, बेसिडियोस्पोर, पिक्निडियोस्पोर और एसियोस्पोर।

बारबेरी पर बने एसियोस्पोर गेहूं पर रोग फैलाने का शुरुआती काम करते हैं। इसके बाद गेहूं की पत्तियों पर गेरुआ रंग के सूक्ष्म एक-कोशिकीय यूरिडोस्पोर बनते हैं। खेतों में एक पौधे से दूसरे पौधे तक रोग यूरिडोस्पोर के ज़रिए ही फैलता है।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि इस फफूंद को जीवित रहने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि यह लैंगिक प्रजनन करे ही। जैसे भारत के मैदानी इलाकों में गेहूं के पौधों पर संक्रमण होने पर इस फफूंद के यूरिडोस्पोर पैदा होते हैं। ये यूरिडोस्पोर हवा में काफी ऊपर तक उड़ जाते हैं। यदि ये यूरिडोस्पोर मैदानी इलाकों में ही बने रहते तो इनका जीवित रहना मुश्किल होता क्योंकि ये बहुत तेज़ गर्मी नहीं सह सकते। मगर होता यह है कि ये स्पोर हवा के माध्यम से दक्षिण भारत की नीलगिरी पहाड़ियों पर पहुंच जाते हैं और वहां की अपेक्षाकृत ठंडी जलवायु में गर्मियां गुज़ारते हैं। नीलगिरी की पहाड़ियों में बारबेरी के पेड़ नहीं पाए जाते। इसलिए यूरिडोस्पोर लैंगिक प्रजनन के अगले चरण में प्रवेश नहीं कर पाते। मगर नीलगिरी क्षेत्र में गर्मियों में जो गेहूं उगाया जाता है वह इन यूरिडोस्पोर को पनाह देता है। फिर अगले जाड़े में जब दक्षिण से हवाएं चलती हैं तो ये देश के मध्यवर्ती भागों में और वहां से उत्तरी इलाकों में पहुंचकर गेहूं पर हमला बोल देते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि यूरिडोस्पोर उत्तर की ओर बढ़ते हुए हिमालय क्षेत्र में पहुंचते हैं, जहां बारबेरी के वृक्ष पर ये अपना लैंगिक चक्र पूरा करते हैं।

पिछले कई वर्षों से इस रोग ने कम-से-कम भारत में गेहूं पर आक्रमण नहीं किया था। मगर हाल ही में पता चला है कि अतीत में कई अकालों का कारण बना यह रोग एक बार फिर नए सिरे से हमला करने को है। इस फफूंद की एक नई किस्म यूजी-99 पैदा हुई है और तेज़ी से फैल रही है। ऐसी आशंका है कि एशिया व अफ्रीका में गेहूं की

फसलें इसकी चपेट में आ सकती हैं।

फफूंदों के अलावा बैक्टीरिया व वायरस भी पौधों पर रोग फैलाते हैं। अनुमान है कि पेड़-पौधों को 25,000 किस्म के रोग लगते हैं। रोगों से होने वाली हानि जलवायु और वातावरण के विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है। इसके अलावा एक महत्वपूर्ण बात पोषक पौधे में रोग प्रतिरोध की भी होती है।

इस रोग के महत्व को देखते हुए वैज्ञानिक इससे निपटने के प्रयास लगातार करते रहते हैं। भारत में कई कृषि प्रयोगशालाएं इस काम में सक्रिय हैं। जब गेहूं की कल्याण सोना, छोटी लरमा आदि किस्में तैयार की गई थीं, तब ये सभी गेरुआ-प्रतिरोधी थीं। सन 1967 तक इनमें यह प्रतिरोध बना रहा परंतु इसके बाद गेरुआ की नई-नई किस्में (12, 17, 104) सामने आईं और एक बार फिर गेरुआ का हमला शुरू हो गया। 1965 में गेरुआ रोग की प्रभावी किस्में 162 तथा 162-ए थीं मगर 1967 में इनका स्थान 12, 17 और 104 ले चुकी थीं। गेहूं की अन्य उन्नत किस्मों (जनक और गिरिजा) के साथ भी यही हुआ था।

जनक को 1973 में जारी किया गया था, तब यह गेरुआ-प्रतिरोधी थी मगर समय के साथ इस पर भी गेरुआ का प्रकोप होने लगा। ऐसा लगता है कि कई कारणों से सूक्ष्मजीवों में अनुवांशिक गुणों के पुनः संयोजन की क्षमता विकसित पौधों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है।

यूजी-99 के आसन्न संकट के मद्दे नज़र भारतीय कृषि वैज्ञानिकों ने इस पर शोध कार्य ज़ोर-शोर से शुरू कर दिए हैं। एक अनुमान के मुताबिक यूजी-99 भारत में करीब 3 वर्ष बाद पहुंचेगा। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने दिल्ली व करनाल स्थित प्रयोगशालाओं में इसके स्पोर्स का परीक्षण देश में उगाई जाने वाली गेहूं की 1600 किस्मों पर किया है; करीब 400 किस्में इसके प्रति संवेदनशील (दुर्बल) पाई गई हैं। वैसे कृषि वैज्ञानिकों का मत है कि यूजी-99 ठंडी जलवायु में ज्यादा पनपती है, हमारे देश की गर्म जलवायु में इसके प्रकोप की संभावना कम ही है। कोशिश यह की जा रही है कि देश में उगाई जाने वाली प्रतिरोधी किस्मों को विकसित किया जाए, ताकि यूजी-99 के खतरे का सामना किया जा सके। *(स्रोत फीचर्स)*